भारतीय संगीत के इतिहास में संगीत समारोहों का स्वरूप (वैदिक काल से गुप्त काल के संदर्भ में)

स्मिता श्रीवास्तव
शोध छात्रा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
Email: smitasrivastava1452@gmail.com

सारांश

भारत वर्ष सदैव अपनी संस्कृति के लिए विश्वविख्यात रहा है तथा भारतीय संस्कृति की आधार नींव उसका संगीत है क्योंकि देश की कला उसका संगीत ही देश की संस्कृति की आत्मा व पहचान होती है. भारत में संगीत वैदिक काल से ही धर्म के साथ सम्बद्ध किया गया है, जैसे-जैसे मानव आध्यात्मिकता की ओर बढ़ा है संगीत कला की भी उन्नति हुई है. वैदिक काल से ही संगीत कला तथा संस्कृति को संवर्धित, सुरक्षित तथा प्रसारित करने की परम्परा रही है जिसके लिए वैदिक काल से ही समाज में संगीत उत्सवों का आयोजन विभिन्न नामों तथा स्वरूपों में किया जाता रहा है. इन उत्सवों के माध्यम से ही हम उस युग की संगीत कला, उनकी विधाओं, शैली तथा कलाकारों से परिचित हो पाते हैं तथा इन संगीत समारोहों के स्वरूप से हम भिन्न भिन्न कालों में उनके आयोजनों में निहित समारोहों के उद्देश्यों को भी समझ पाते हैं क्योंकि उस समय ये संगीत उत्सव ही संगीत के प्रसार और विकास का माध्यम होते थे. अपने इस शोध पत्र में मैने संगीत समारोहों के स्वरूपों का उल्लेख वैदिक से गुप्त काल के अन्तर्गत किया है.

कुंजी शब्द : उपादान, विपुल, समृद्ध, संवर्धित, आध्यात्मिकता, विश्वबन्धुत्व

परिचय:

सृष्टि के प्रारम्भ से ही इसके प्रत्येक युग में संगीत को धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों में मनाने की परम्परा रही है. यह बात अलग है कि इन उत्सवों को मनाने के प्रयोजन हर काल में भिन्न-भिन्न रहे हैं परन्तु हर काल में इन संगीत उत्सवों में उस काल की सांगीतिक परम्परा के प्रचार-प्रसार के साथ उसकी सांगीतिक कला को संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. ये संगीतिक उत्सव प्रत्येक काल में भले ही भिन्न-भिन्न प्रयोजनों तथा नामों के साथ मनाये जाते रहे हैं पर ये बात तो अक्षरशः सत्य है कि उस काल में जब संगीत को प्रचारित-प्रसारित और सुरक्षित रखने के अन्य साधन नहीं थे तब उस काल में इन संगीत कलाओं को सुरक्षित रखने में संगीत समारोहों में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा सांगीतिक सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाये रखा. जिनका संबंध न केवल धार्मिक अनुष्ठानों, अपितु समय के साथ-साथ आर्थिक, राजनैतिक सम्बंधों के लिये भी किया जाने लगा.

प्राचीन वैदिक काल से ही भारतीय संगीत दो धाराओं में प्रवाहित होता रहा है - एक वह जिसका प्रयोग धार्मिक समारोहों पर परमार्थिक दृष्टि से किया जाता रहा और दूसरा वह जिसका लौकिक समारोहों पर केवल मनोरंजन की दृष्टि से किया जाता रहा है.[1] संगीत समारोहों की इस भव्य सांगीतिक परम्परा ने प्राचीन वैदिक युग से आधुनिक वर्तमान समय तक पहुँचने में एक लम्बी यात्रा तय की है. प्रत्येक काल में संगीत समारोहों के आयोजनों का उद्देश्य, उनके स्वरूप व उनके नामों का अध्ययन बहुत आवश्यक, रोचक तथा महत्वपूर्ण है. प्रत्येक काल में इसके आयोजनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

वैदिक काल:

वेदों की रचना काल ईसा से लगभग 2000 से 1000 वर्ष पूर्व माना जाता है. वेदों की संख्या चार है- ऋगवेद, यजुर्वेद, अथर्वेद और सामवेद. इस युग में हमें गायक, वादक एवं नर्तक तीनों प्रकार के कलाकार मिलते हैं. समाज में संगीतज्ञों को उच्च दृष्टि से देखा जाता था. संगीत के सभी कार्यक्रमों में स्त्रियाँ निःसंकोच होकर भाग लिया करती थीं.

इस काल में संगीत समारोह का स्वरूप एक सांगीतिक मेले के रूप में हुआ करता था जो 'समन' के नाम से जाना जाता था. ये मेला रात में होता था. इस मेले में कुमारियों की संगीत-संम्बन्धी प्रतिभा की जाँच होती थी. अपनी सांगीतिक उच्चता को सफल प्रमाणित करने वाली कुमारियों का चयन विवाह के लिए किया जाता था. यही समन आगे चलकर 'समज्जा' के नाम से जाना जाने लगा.[2]

जर्मनी के विद्वान ए.पी. केगी ने इस उत्सव का वर्णन करते हुए अपनी पुस्तक ऋगवेद के उन्नीसवें पृष्ठ पर लिखा है कि- पत्नियाँ और कुमारियाँ सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत होकर प्रसन्नता पूर्वक समन की ओर चल पड़ती थीं. इस वातावरण में वन, खेत, खलिहान हरियाली से ढंक जाते थे तथा मृदंग धमक उठते थे. नव युवक-युवतियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नाचने लगते और तब तक नाचते जब तक उनके साथ भूमि और दिशाएँ भी चक्कर नहीं खाने लगते तथा नाचते समूह के धूल के बादल नहीं घेर लेते. इस प्रकार वैदिक युग के समारोहों का स्वरूप एक स्वयंवर के जैसा था. बस अन्तर इतना था कि केवल संगीत प्रतिभा के आधार पर वर-वधू का चुनाव किया जाता था.

पौराणिक युग के समारोह:

पौराणिक युग में संगीत संबंधी तथ्यों की जानकारी हमें पुराणों, उपनिषदों तथा ब्राह्मण ग्रंथों से मिलती है. इस काल में लोकगीत तथा लोक नृत्य का प्रचार शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा ज्यादा था. इस युग के संगीतज्ञ अशिक्षित तो नहीं होते थे परंतु संकीर्ण मस्तिष्क के होते थे तथा वैदिक युग के संगीतज्ञों की अपेक्षा कम उदार दृष्टि के होते थे.

सार्वजनिक उत्सवों की संख्या वैदिक युग की अपेक्षा अधिक हो गई थी तथा पौराणिक युग में वर-वधू का चुनाव 'समज्जा' के द्वारा होता था. इसके स्वरूप के संबंध में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं - उत्सव

---

[1] भारतीय संगीत: एक ऐतिहासिक विश्लेषण- स्वतंत्र शर्मा, पृ-3

[2] भारतीय संगीत का इतिहास-भगवत शरण शर्मा, पृ. सं.- 32

जिसमें जन समुदाय इकट्ठा हो जाता था तथा इस विशेष प्रकार की गोष्ठियों में स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध एकत्र होकर अनेक प्रकार के खेल-तमाशा, नृत्य, मल्ल युद्ध, दंड-युद्ध, अजा-युद्ध, संगीत, मेष-युद्ध, हरित-युद्ध आदि खेल क्रीड़ाऐ होती थी. इन्हें 'समाज' भी कहा जाता था. इस प्रकार हम देखते हैं कि पौराणिक युग में इस समारोह का स्वरूप थोड़ा परिवर्तित हुआ, जिसमें युवक-युवतियों के अलावा समाज का हर वर्ग यानी बाल तथा वृद्ध भी हिस्सा लेते तथा संगीत के अलावा अन्य क्रियाओं को भी सम्मिलित किया गया.

महाकाव्य काल:

महाकाव्य काल के अंतर्गत प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामायण' और 'महाभारत' को रखा गया, ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व ऋषि वाल्मीकि द्वारा रामायण की रचना की गई. इस काल में राजा तथा प्रजा सभी संगीत के परम पोषक थे. रामायण काल में पूरे समाज में संगीत की दिव्य आभा प्रवाहित हो रही थी. संगीत उत्सवों का सार्वजनिक आयोजन किया जाता था.[1]

रामायण कालीन संगीत पुरातन परंपराओं पर आधारित था. उत्सवों के स्वरूप की बात करें तो यह उत्सव परंपराओं तथा किसी विशेष अवसर पर आधारित होते थे, जैसे- स्वयंवर प्रथा का प्रचलन था और वर-वधू के चुनाव रामचंद्र जी के धनुष तोड़ने, जयमाला तथा उनके 14 वर्षों के बाद अयोध्या लौटने पर संगीत उत्सवों का आयोजन आदि. नगर के प्रत्येक घर के प्रत्येक जन संगीत उत्सव में भाग लेते थे. इस काल में संगीत की तीनों विधाओं गायन वादन तथा नृत्य सभी के उत्सव हुआ करते थे.

महाभारत काव्य:

महाभारत ग्रंथ का रचनाकाल ईसा से लगभग 300 वर्ष पूर्व माना जाता है अर्थात रामायण से लगभग 100 वर्ष बाद इस काव्य के रचयिता महर्षि वेदव्यास थे. इस विशाल ग्रंथ में लगभग एक लाख श्लोक है. इस काल में संगीत उत्सवों का रूप वैदिक कालीन संगीत से कुछ परिवर्तित हुआ था. यह परिवर्तन मौलिक तत्वों में ना होकर उनकी प्रदर्शन की शैलियों में हुआ था. 'रासलीला' नृत्य की उत्पत्ति इसी काल में हुई. भगवान कृष्ण ने समाज में धर्म और ज्ञान के साथ-साथ संगीत का भी प्रचार प्रसार किया, उनकी बंसी ने समाज को संगीतमय बना डाला. नारियों की शास्त्रीय संगीत में विशेष रुचि थी. इस काल में संगीत उत्सव का स्वरूप पुष्प चयन, उद्यान क्रीड़ा, एवं जल क्रीड़ा इत्यादि थे. इस काल में जातियों के वर्ग बन गए थे, जो कि ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र थे. प्रत्येक जाति के संगीत उत्सव पृथक-पृथक होते थे.

जैन युग:

जैन युग में संगीत कृतियां श्रृंगार पक्ष की अपेक्षा आध्यात्मिक पक्ष की प्रस्तुति पर सशक्त थी. इस युग में जातीय बंधन जो समाज में मौजूद थे, टूट गए थे तथा संगीत पर जो एकमात्र अधिकार था अब खत्म हो गया था. सभी छोटे-बड़े वर्गों में संगीत समान रूप से साध्य था. इस काल में समारोह के आयोजन हेतु राज दरबारों से भी प्रयास किए जाने लगे. राज्य की ओर से संगीत प्रतियोगिताएं आयोजित की जाने लगी जिसमें हर कोई भाग लेने के लिए स्वतंत्र था. प्रतियोगिता में भाग लेने वाले प्रतियोगियों को सफल होने पर पुरस्कृत भी किया जाता था. इस काल में कई नई गायन की शैलियों का प्रचलन हुआ सामूहिक संगीत, कला प्रदर्शन अर्थात समारोह का इतना प्रभाव था

1 संगीत शास्त्र सुरसरि अवधेश प्रताप सिंह तोमर, पृ-27

कि जो कुमारिया सार्वजनिक रूप से नृत्य करती थी उनकी प्रतिभा समाज में उच्च समझी जाती थी. उन स्त्रियों को कोई बुरी दृष्टि से नहीं देख सकता था. समाज में जितना राजा का सम्मान था उतना ही उनका भी सम्मान था.[1]

बौद्ध काल:

बौद्ध काल की स्थिति का ज्ञान इस युग के बौद्ध साहित्य जातक, पिटक, और अवदान से प्राप्त होता है. इसके अतिरिक्त 'थेरगाथा' भिक्षु द्वारा तथा 'थेरीगाथा' भिक्षुणियों द्वारा गाने की परम्परा थी. इस काल के संगीत में जीवन की व्यापकता का अधिक समावेश हो गया था तथा संगीत में वैदिक तथा लौकिक दोनों पक्षों का प्रचलन था. बौद्ध विहारों में संगीत आराधना के लिए देवदासियों की नियुक्ति की जाती थी. सामूहिक संगीत अनुष्ठान, गिरग्ग, समज्ज तथा अन्य लोकोत्सवों का प्रचलन था.

इस काल में किसी भी संगीतज्ञ की सफलता का आधार मानव को समस्त विकारों से अपने संगीत प्रदर्शन के माध्यम से ऊपर उठा सकने में था. समाज में समारोहों का सामूहिक संगीत प्रदर्शन तथा प्रचार का एक और स्वरूप था. जिसमें बुद्ध के जीवन सिद्धान्तों को गीतों में पिरो कर उसे सुन्दर मधुर कंठ ध्वनियों से नगर-नगर और गाँव-गाँव हर गलियों में गाया जाता था. जिससे सोई हुई जनता के मनोभावो की जागृति कर उसे प्रकाशित जीवन पथ की ओर ले जाया जा सके जिसका उद्देश्य आत्मीयता की प्राप्ति था. इस प्रकार इस युग में समारोहों का स्वरूप और उद्दे श्य निर्धारित होता है.

मौर्य काल:

इस काल का शासक प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त मौर्य संगीत का प्रेमी था. अपने दरबार में नित्यप्रति कलाकारों को गायन तथा नृत्य के लिये आमंत्रित करता था. ईसा से लगभग 321 वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त ने नंद वंश के राजा पर विजय प्राप्त कर उसके राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया. सेल्युकस जोकि सिकन्दर का सेनापति था, संधि के फलस्वरूप उसने अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से कराया. सेल्यूकस का राजदूत मेगस्थनीज़ जो चन्द्रगुप्त के दरबार में ही रहने लगा था. मेगस्थनीज़ अपनी पुस्तक इंडिका में उल्लेख करता है कि इस युग में संगीत गृह तथा नाट्य शालाऐं थीं. अपने दरबार में आयोजित संगीत समारोहों में चन्द्रगुप्त सब प्रकार के संगीतज्ञों को प्रदर्शन हेतु आमंत्रित करता था तथा जिस भी कलाकार का प्रदर्शन उसे अच्छा लगता था उसे पुरस्कृत भी करता था. इस काल में समारोह के दरबारी स्वरूप की आधारशिला रखी जा चुकी थी जोकि आने वाले कालों में संगीत के विकास और प्रचार का सशक्त माध्यम बना. मौर्य काल के अन्य शासक अर्थात चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र बिन्दुसार गद्दी पर बैठा, उसके शासन में संगीत और समारोह में कोई उन्नति नहीं हुई.

बिन्दुसार के बाद अशोक गद्दी पर बैठा जो युद्ध में हुए रक्तपात के बाद समाज से विरक्त होकर बौद्ध धर्म को अपना लिया और बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अनेक देशों में अपने राज्याधिकारियों को भेजा, जिससे भारतीय संगीत भी उन देशें में पहुँचा, इसके साथ ही दूसरे देश के संगीतज्ञों को भी अपने राज्य में प्रदर्शन हेतु आमंत्रित किया जिसके फलस्वरूप भारतीय संगीत- चीन, मिश्र, जावा, सुमात्रा तथा तिब्बत आदि अनेक देशों में पहुँचा.

अशोक के शासन काल में समारोह के समज्जा स्वरूप जो बीच में बंद हो गया था पुनः शुरू कर दिया गया, परन्तु जब अशोक सम्राट को लगा कि समज्जा से देश के संगीत का वातावरण दूषित हो रहा है तो उसने पुनः

1 भारतीय संगीत का इतिहास-भगवत शरण शर्मा, पृ.-36

समज्जा को बन्द कर दिया. अतः अशोक के शासन काल में संगीत समारोह के दरबारी संगीत समारोह का ही प्रचलन रहा.

शुंग काल:

इस वंश का आगमन अशोक की मृत्यु के पश्चात मौर्य वंश के अंतिम शासक राजा वृहद्रथ मौर्य के सेनापति शुंग द्वारा राजा वृहद्रथ को मारकर गद्दी हासिल करने पर हुई. इसलिए ये काल शुंग काल कहा गया. ये संगीत और साहित्य प्रेमी था. संस्कृत के महान विद्वान पाणिनी इन्हीं के शासन काल में हुये तथा उन्होंने 'अष्टाध्यायी' पर महाभाष्य लिखा. इस काल में नृत्य खूब प्रचलित था. वीणा, मृदंग, दुन्दुभि आदि का उल्लेख मिलता है. गुजरात के लोकनृत्य गरबा का जन्म भी इसी काल में हुआ. भारतीय संगीत की आभा इसके पूर्व कालों बौद्ध तथा मौर्य कालों की अपेक्षा धूमिल हो गयी जिससे संगीत समारोहों के स्वरूप या आयोजन में कुछ भी विकास, परिवर्तन नहीं हुआ.

कनिष्क काल:

इस काल में कुशान जाति ने भारत में प्रवेश किया तथा इससे भारतीय संगीत अत्यधिक प्रभावित हुआ. संगीत के विकास में सम्राट कनिष्क ने बहुत योगदान दिया. अनेक शुभ अवसरों पर गायन, वादन के समारोहों का आयोजन होता था. अनेक नृत्य तथा गायन शालाओं की स्थापना करायी गयी. संगीत के समारोह आयोजित किये गये जिसमें कश्मीर, अफगानिस्तान, चीन तथा मगध के कलाकार एकत्र होते थे. कलाकारों में परस्पर प्रेम और सदभावना का उदय कनिष्क काल की देन है. इन संगीत समारोहों से एकरूपता, कलात्मकता को बल मिला तथा इन समारोहों द्वारा मानवता एवं विश्व बंधुत्व की भावना जागृत होने लगी.[1] संगीत के विकास की दृष्टि से इस काल को प्रगतिशील युग कहा जा सकता है.

गुप्त काल:

गुप्त वंश का संस्थापक श्री गुप्त था. उसके बाद उसका पुत्र घटोतकच्छ राजा बना, जिसने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की. दोनों ही राजाओ के शासन में संगीत की कोई विशेष प्रगति नहीं हुई परन्तु कनिष्क काल का संगीत धूमिल होने लगा. इस युग के संगीत के अध्यात्मिक पृष्ठभूमि में थोड़ा अन्तर आया.

घटोत्कच्छ के बाद उसका पुत्र चंद्रगुप्त प्रथम हुआ. जिसके शासनकाल में उसके दरबार में ना तो संगीतज्ञ और न हीं संगीत समारोह का उल्लेख मिलता है. सामान्य जन द्वारा की संगीत के विकास के प्रयत्न किए गए थे. इस युग में दत्तिल द्वारा रचित 'दत्तीलम' का उल्लेख मिलता है.

चंद्रगुप्त प्रथम के बाद जब उसका पुत्र समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठा तब संगीत की स्थिति में काफी सुधार हुआ क्योंकि समुद्रगुप्त उच्च कोटि का संगीतज्ञ था. उसके दरबार में प्रसिद्ध कवि हरिषेण रहा करते थे तथा दरबार में कुशल संगीतज्ञ एवं नृत्य कुशल दासियाँ भी थी. दरबार में संगीत समारोह के आयोजन भी हुआ करते थे.

समुद्रगुप्त जब किसी राज्य पर विजय प्राप्त करके आते थे तो राजदरबार में ही नहीं अपितु पूरे राज्य में संगीत के आयोजन हुआ करते थे. दिन-रात गायन और नृत्य के कार्यक्रम होते थे तथा स्त्रियां राजा का यशोगान करती थीं. इस शाही संगीत समारोह में आम जनता भी भाग लेती थी. इसके शासनकाल में शास्त्रीय संगीत का

1 भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण-स्वतंत्र शर्मा, पृ.-40

अधिक प्रभाव तथा प्रचार था. इस काल में भी स्वयंवर होते थे तथा कुंवारियों का चयन सांगीतिक प्रतिभा द्वारा किया जाता था. संगीतकारों के श्रेष्ठता की जांच उनके नैतिक चरित्र से की जाती थी.[1]

समुद्रगुप्त स्वयं एक कुशल वीणा वादक था और उसकी रुचि गीत लेखन में भी थी. इसके शासनकाल में कई नाट्य शालाओं की भी स्थापना की गई क्योंकि नाट्य में भी इनकी रूचि थी. इन नाटकों में गायन और नृत्य भी होता था जो कि कला के सभी पक्षों को समाहित किए हुए होता था. इन नाटकों में स्त्रियां भी भाग लेती थी. पुरुषों के साथ साथ लोक-गायन तथा लोक-नृत्य का प्रचलन तो था परंतु इस बात का विशेष ख्याल रखा जाता था कि इसमें ऐसा कोई भाव निहित न हो जो भारतीय संस्कृति की गरिमा को ठेस पहुंचाए. इसके काल में दरबार समारोह के अलावा स्वयंवर द्वारा सांगीतिक सभा का प्रचलन था जिसमें कला के सभी पक्ष समाहित होते थे.

समुद्रगुप्त के बाद इसका पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय गद्दी पर बैठा जिसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की. वह भी अपने पिता की भाँति संगीत प्रेमी तथा दानी धर्मात्मा राजा था. उसने न केवल देश अपितु विदेशों में भी धर्म और संगीत का प्रचार प्रसार किया. भारतीय संगीत की प्रगति रोम, फ्रांस, इंग्लैंड, आयरलैंड, हंगरी आदि देशों में इसी काल में हुई थी.

गुप्त काल में सिर्फ संगीत या नाटक की ही नहीं बल्कि ज्योतिष, गणित, स्मृतियों आदि विषयों की उन्नति हुई साथ ही इन विषयों पर उत्तम रचनाएं भी हुई थीं. इसी काल में कालिदास ने कई उत्कृष्ट रचनाऐं की, जैसे- मेघदूत जिसमें कालिदास ने उज्जैयनी में महाकाली मन्दिर में नृत्य के संकेत का उल्लेख किया. मालविकाग्निमित्रम में शिव-नृत्य का उल्लेख किया. विश्व संगीत का संगीतमय अनुपम नाटक शकुन्तला इत्यादि. कालिदास के अतिरिक्त अन्य विद्वान हुये जैसे आर्यभट्ट, विशाखदत्त, शुद्रक, भास, वराहमिहिर, भारवि आदि जिन्होंने अपनी उत्तम रचनाओं से संगीत, साहित्य जगत को समृद्ध किया.

इस युग में सभी विषयों के प्रकांड विद्वान हुए जो कि इस युग का बहुत बड़ा सौभाग्य था तथा इस युग का प्रत्येक राजा संगीत ज्ञानी तथा प्रेमी रहा और राजा के साथ-साथ इस युग की साधारण जनता भी संगीत साहित्य और कला की अच्छी समझ रखती थी जो कि इस काल को संगीत कला की दृष्टि से स्वर्ण युग के रूप में अलंकृत करती है. इस युग में संगीत समारोहों का दरबारी स्वरूप तथा सांगीतिक उत्सवों के रूप में दृष्टिगत होता है.

विश्लेषण:

संगीत समारोहों की ये समृद्ध परम्परा जो कि आज अपने अखिल भारतीय स्वरूप के विपुल धरातल पर विद्यमान है जिसको प्रारम्भ वैदिक काल में 'समन' के नाम से हुआ. ये परम्परा वैदिक काल (प्रथम शताब्दी) में 'समन' नाम से प्रस्फुटित हुआ जो आने वाले युगों में समज्जा, समज्ज और समाज जैसे अन्य नामों तथा स्वरूपों के साथ गुप्तकाल अर्थात (सातवीं शताब्दी तक) आयोजित होती रही तथा इसके स्वरूप ने इनके उद्देश्यों को निर्धारित किया. स्वरूप और नाम भले ही इन संगीत उत्सवों में अलग रहे हों परन्तु इन उत्सवों ने संगीत संरक्षित और प्रचारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. उससे न केवल देश बल्कि अन्य दूसरे देशों में भी भारतीय संगीत और संस्कृति को सशक्त रूप से स्थापित किया, साथ ही साथ कला और संगीत के आदान-प्रदान से एकता तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को भी साकार किया.

1 संगीत शास्त्र सुरसरि-अवधेश प्रताप सिंह तोमर, पृ.- 46

निष्कर्ष:

सृष्टि के प्रारम्भ से ही इसके प्रत्येक युग में संगीत के धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों के मनाने की परम्परा रही है. इन संगीत उत्सवों ने उस काल की संगीत कला को संरक्षित करने के साथ-साथ उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. अतः वैदिक काल में समन, पौराणिक काल में समज्जा, महाकाव्य काल में विभिन्न सांगीतिक उत्सव जैसे- पुष्प चयन, जल क्रीड़ा, उद्यान क्रीड़ा, बौद्ध काल में गिरग्ग, समज्ज तथा मौर्य काल, कनिष्क काल तथा गुप्त काल में संगीत उत्सवों के दरबारी स्वरूप के आरम्भ ने निरंतर इन संगीत उत्सवों के आयोजन के स्वरूप तथा उद्देश्यों में परिवर्तन तथा विकास ने इन्हें और भी समृद्ध किया जिससे न केवल संगीत कला का विकास हुआ बल्कि संगीत कला के विद्वानों को भी कला प्रदर्शन तथा अपनी कला का मूल्यांकन करने का अवसर प्रदान किया, जिससे भारतीय संगीत तथा संस्कृति को दृढ़ आधार तथा विकास दिया है और संगीत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित करने का साधन भी दिया है.

अतः आज अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित संगीत समारोहों के आयोजन में इन प्राचीन वैदिक समारोह की कडियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है. प्रत्येक काल में लगातार इनके आयोजनों में आये परिवर्तन तथा विकास ने इन समारोहों को आज भी निरंतर विकास का मूलमंत्र दिया है जोकि हमारी कला, हमारी संस्कृति के संरक्षण और प्रसार का एक मजबूत स्तंभ है.

इन कालों में संगीत समारोहों के स्वरूप का अध्ययन करके हम ये देखते हैं कि संगीत की सामूहिक अभिव्यक्ति अर्थात प्रदर्शन में संगीत समारोहों की उत्पत्ति का मूल निहित है. जहाँ इस समूह में कला के प्रदर्शनकर्ता के साथ-साथ कला को सुनने समझने वाले हैं, वहीं जाँचने-परखने और सराहने वाले भी मौजूद हैं. जिसके माध्यम से उस कलाकार तथा उस क्षेत्र विशेष का संगीत अन्य क्षेत्रों तथा कलाकारों तक पहुँच पाता था.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. शर्मा, भगवत शरण, *भारतीय संगीत का इतिहास*, प्रकाशक – संगीत कार्यालय, हाथरस-2010
2. परांजपे, शरच्चन्द्र श्रीधर, *भारतीय संगीत का इतिहास,* प्रकाशक –चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी-2015
3. पुरी मृदुला, *संगीत मीमांसा*, प्रकाशक – सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-2007
4. तोमर, अवधेष प्रताप सिंह, *संगीत शास्त्र सुरसरि,* प्रकाशक –कृष्णा कम्प्यूटर सागर-2012
5. मिश्रा, जया, *वर्तमान सामाजिक परिवर्तन में संगीत की नई भूमिका,* प्रकाशक – अनुभव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद-2012
6. शर्मा जया, *पंडित भातखंडे के ग्रन्थों का संगीत-शिक्षण में योगदान,* प्रकाशक – कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली-2012